International Journal of Applied Research 2017; 3(2): 384-390

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(2): 384-390
www.allresearchjournal.com
Received: 22-12-2016
Accepted: 24-01-2017

डॉ. मनोरमा सिंह
एम.ए. एवं पी–एच.डी. (इतिहास)
प्राचार्य, पं. आर.एस.एस. शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, पहड़िया जिला रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

Correspondence
डॉ. मनोरमा सिंह
एम.ए. एवं पी–एच.डी. (इतिहास)
प्राचार्य, पं. आर.एस.एस. शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, पहड़िया जिला रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सल्तनतकालीन समाज का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ0 मनोरमा सिंह

सारांश
भारतीय प्रारंभिक समाज मे वर्गभेद नहीं था। संभवतः समाज मे वर्गभेद का प्रारंभ आर्यों से हुआ। आर्यो के आदि साहित्य ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर रंग का प्रयोग वर्ग वर्ण के अर्थ मे किया गया है। धर्मसूत्रों बौद्ध ग्रंथों एवं मेगस्थनीज से ज्ञात होता है कि ईसा के कई शताब्दियों पूर्व कतिपय जातियाँ विद्यमान थीं। मेगस्थनीज ने मौर्यकालीन सात जातियों का उल्लेख किया है। दार्षनिक, कृषक, गोपालक, शिल्पकार, सैनिक, अवेक्षक तथा सभासद एवं कर ग्राही। मनु ने 60 जातियों और असंख्य उप जातियों का संकेत दिया है। निबंधकारों ने भी असंख्य जातियों एवं उपजातियों के संकेत दिए हैं। हमे उस काल के लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का स्पश्ट चित्र उस समय के अभिलेखों तथा चीन, अरब आदि विदेशी यात्रियों के लेखों से मिलता है। जाति प्रथा धीरे–धीरे जटिल होती जा रही थी, फिर भी विदेशी हिन्दू हो सकते थे और हमारे समाज मे घुल–मिलकर वर्ण व्यवस्था मे स्थान प्राप्त कर सकते थे। जातियों को अपने कर्त्तव्य क्षेत्रों में बांधने के जो प्रयत्न किये गये उनका स्थायी फल प्राप्त नहीं हुआ। इस काल मे कुल ब्राम्हण सैनिक हो गये, कुछ क्षत्री व्यापारियों की तरह रहने लगे और कुछ वैष्य और शूद्र शक्तिशाली शासक भी थे। यद्यपि लोग अपनी जाति मे ही विवाह करते थे, परंतु अंतरजातीय विवाह भी प्रचलित थे।

मूल शब्दः सल्तनतकालीन, समाज, जातियाँ, समीक्षात्मक

प्रस्तावना
मध्य भारत में अधिकतर लोग शाकाहारी थे, वे न किसी जीव जंतु की हत्या करते थे और न शराब पीते थे वे प्याज और लहसुन भी नहीं खाते थे इस प्रान्त के निवासी उत्तर पश्चिमी भारत के लोगों को पूर्णतया शुद्ध नहीं समझते थे। लोग छुआछूत को मानते थे और चण्डाल लोग जब कभी बाजार मे अथवा उच्च वर्गों के लोगों के बीच मे जाते थे तो वे लकड़ी बजाकर अपने आने की सूचना देते थे। स्त्रियॉ बहुत कम पर्दा करती थीं। उच्च श्रेणी की स्त्रियॉ शासन और सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भाग लेती थी। ऊंचे घरानों की लड़कियों को उच्च शिक्षा भी दी जाती थी। स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी। उच्च श्रेणी के लोगों में बहुपत्नीत्व का रिवाज था, परंतु स्त्रियों को पुनर्विवाह की आज्ञा न थी। शासक परिवारों मे सती प्रथा बहुत लोकप्रिय होती जा रही थी।
देश मे विशेषकर मध्य देश मे आबादी घनी थी। लोग समृद्धशाली और सुखी थे। उनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी थी। धन कुछ ही लोगों के बीच संगृहीत होता जा रहा था, जो वास्तव मे बहुत ही अमीर थे। धनी लोगों द्वारा सार्वजनिक संस्थाऍं स्थापित करना और निर्धनों के कश्टों को दूर करना एक प्रकार का धार्मिक कर्तव्य माना जाता था। वे लोग सड़कें, धर्मशालाऍं और अन्य सर्वोपयोगी इमारतें बनवाते थे। जनसाधारण के उपयोग के लिए बगीचे लगवाने और कुऍं आदि खुदवानें का भी रिवाज था।[1]

सल्तनत कालीन सामाजिक सरंचना
भारत मे वर्ण एवं जाति व्यवस्था का आधार प्रायः जन्म रहा है। सल्तनत काल मे यह आधार जड़ हो गया था। समाज जाति के आधार पर व्यवस्थित था। प्रत्येक जाति का अपना एक विशेष व्यवसाय था। मुस्लिम भूगोलविद इब्न–खुरद दबा ने अपने 9 वीं शताब्दी ई. के ग्रंथ ''किताबुल–मसालिक वा मुमालिक'' मे भारतीय जातियों के सात वर्गो का उल्लेख इस प्रकार किया हैः–

1. शकश्रिरी (क्षत्रिय) देश के कुलीन वर्ग है। राजा इसी वंष के होते है। इनके समक्ष सभी विनीत होते हैं, किन्तु ये किसी के आगे शिर नही झुकाते।
2. बरहिमा (ब्राम्हण) किसी औषध अथवा मद्य (नशा) के आसक्त नहीं है।
3. कस्त्री (खत्री) एक से लेकर तीन प्याले तक पी सकते है। ब्राम्हण उनकी(खत्रियों) पुत्रियों से विवाह करते है पर अपनी पुत्री उन्हें (खत्रियों) को नहीं देते है।
4. शूदर (शूद्र) कृषक होते है।

5. वेश (वैश्य) विभिन्न व्यवसाय करते है।
6. शानडाल (चंडाल) नट होते है।
7. जम्ब (डोम) व्यवसायिक गायक होते है और उनकी स्त्रियॉ श्रृंगार की शौकीन होती है।

इब्न खुरद दबा के समान ही अल –इदरिसी ने भी भारत की हिन्दू मध्यकालीन जातियों के विशय मे लिखा है, कि ''भारत की जनता सात जातियों मे बंटी है, जिनमे अलसखरिया सबसे अधिक प्रतिष्ठित है। राजा इसी जाति सें संबंधित होते है। तदुपरांत अल–बरहिमा (ब्राम्हण) का स्थान है। ये भारत के भक्तजन है। अलबरहिमा किसी प्रकार की मदिरा या उत्तेजक द्रव्य का सेवन नहीं करते, वे मूर्ति पूजक हैं। इनके बाद तीसरी जाति आती है, वे हैं अल–कृ–सत्रिय (क्षत्रिय) ये तीन प्याला मदिरा पान करते हैं। यह वर्ग ब्राम्हणों मे विवाह करता है, जबकि ब्राम्हण इनसे वैवाहिक संबंध नहीं जोड़ते। उसके बाद ''अल–शुद्रिया'' (शुद्रिय) है। वे किसान और खेतिहर है। उनके बाद ''अल फेसिया'' (अल बेरिया) हैं और वे शिल्पी तथा कारीगर होते है। अन्य जातियों मे अल–एनडालिया भी है। वे संगीतज्ञ होते है और उनकी स्त्रियों का सौंदर्य सुविख्यात है। इनके पश्चात् इनमे अलधूबिया हैं। उनका रंग सांवला होता है। इनका पेशा मनोरंजन और खेलकूद करना है तथा वे अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों के वादक है।''

इस काल की जातियों के विषय मे अल–बिरूनी ने अधिक व्यवस्थित जानकारी दी है। वह लिखता है कि हिन्दू अपनी जातियो को ''वर्ण' कहते है और वंशावली की दृष्टि से वे उन्हें जातक अर्थात जन्म कहते हैं ये जातियॉ आरंभ से ही केवल चार है– इनमे सर्वश्रेष्ठ जाति ब्राम्हणों की है जिनके संबंध मे हिन्दू शास्त्रों में कहा गया है कि उनकी सृष्टि ब्रम्हा के सिर से हुई थी और चूँकि ब्रम्हा प्रकृति नामक शक्ति का ही दूसरा नाम है और सिर पशु के शरीर का सबसे ऊंचा भाग होता है। इसलिए ब्राम्हणों को समस्त वंश का श्रेष्ठ अंग माना जाता है। यही कारण है कि हिन्दू ब्राम्हणों को मनुष्य जाति मे सर्वश्रेष्ठ मानते है। अगली जाति क्षत्रियों की जिनके बारे मे उनका कहना है कि उनकी सृष्टि ब्रम्हा के कंधो और हाथों से की गई है। उनका स्तर ब्राम्हणों से कुछ अधिक निम्न नहीं माना जाता। उनके बाद वैश्य आते है जिन्हें ब्रम्हा की जंघा से बनाया गया था। शूद्र ब्रम्हा के पैरों से बनाए गए थे। बाद के दो वर्गो के बीच बहुत अधिक अंतराल नही है। यद्यपि इन वर्गो में आपसी भेद है फिर भी नगरों व गावों में एक साथ रहते है, और एक ही प्रकार के मकानों और स्थानों मे एक दूसरे मिलते जुलते रहते है। शूद्रों के बाद वे लोग आते है जो अंत्यज कहलाते है। वे विभिन्न प्रकार के निम्न कार्य करते है और उनकी गणना किसी भी जाति मे नहीं होती बल्कि उन्हें किसी विशेष शिल्प या व्यवसाय का सदस्य माना जाता है, जिनकी भी आठ श्रेणियॉ है और उनमें धोबी, चमार और जुलाहों को छोड़कर इनसे कोई किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखना चाहता था।

सल्तनत कालीन समाज मे वर्णगत जातियॉ

समाज के परंपरागत वर्ण व्यवस्था मे अनेक प्रकार की जातियों का प्रादुर्भाव इस काल मे हुआ था। मध्य काल मे कम से कम 34 प्रकार के ब्राम्हण, 36 प्रकार के क्षत्रिय, 84 प्रकार के वणिक और अनेक प्रकार के शिल्पीधर्मी पेशेवर जातियॉ देखने को मिलती हैं। इसी प्रकार इस काल मे वर्ण संकर जातियों की संख्या भी पर्याप्त संख्या में बढ़ी। इसी काल मे लिखित ''चन्दायन'' में हिन्दुओं की विभिन्न जातियों का उल्लेख मिलता है, विभिन्न जातियों से उत्पन्न अनेकानेक वर्ण संकर जातियों का समाज मे प्रादुर्भाव हुआ था जिनकी संख्या समय के साथ बराबर बढ़ती ही चली गई।

इस काल मे भारतीय समाज की जाति व्यवस्था मूलतः जन्म पर आधारित थी। जन्म के आधार पर विकसित जातियों के जीवन और संस्कृति की विशिष्टता को इस प्रकार देखा जा सकता है। एक जाति का सदस्य अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं कर सकता था। विभिन्न जातियॉ अपने खानपान मे एक दूसरे पर प्रतिबंध रखती थीं जातियों के व्यवसाय प्रायः निश्चित थे। विभिन्न जातियों के अपने विशेषाधिकार थे। जाति के निर्धारित नियमों को तोड़ने पर जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। जातिगत प्रतिष्ठा परंपरा पर निर्भर करती थी।

सामाजिक संरचना मे जाति और प्रजाति की भिन्नता उल्लेखनीय है। जाति और प्रजाति मे बड़ा भेद है। सामाजिक परंपरा व्यवस्था एवं जन्म पर आधारित समूह एक जाति का होता है। पर प्रजाति ऐसे मनुष्यों का समूह है, जिन्हें कुछ सामान्य शारीरिक लक्षणों के आधार पर दूसरों से अलग किया जा सकता है।

सल्तनत कालीन भारत में मुस्लिम समाज की संरचना

भारत मे मुस्लिम समाज की संरचना उनके आगमन एवं प्रसार से काफी कुछ संबंधित है। हम देखते हैं कि अरब मे इस्लाम के अभ्युदय के साथ भारत मे मुसलमानों के आने का क्रम तीव्र हो गया था। 644 ई. के प्रारंभ मे अब्दुर रहमान ने काबुल पर आक्रमण कर हजारों लोगों को इस्लाम मानने के लिए विवश किया था। इसके अतिरिक्त व्यापारियों के रूप में अरब मुस्लिम सिन्ध, गुजरात व मालाबार तट पर बसते जा रहे थे। 711–12 ई. में मुहम्मद–बिन–कासिम ने सिंध पर आक्रमण कर अलोर, निरून, दवल व मुल्तान छीन लिया। अरबियों ने वहॉ मस्जिदें बनवाई, इस्लाम का प्रचार किया व मुस्लिम गवर्नरों की नियुक्ति की। मुहम्मद–बिन–कासिम ने मुल्तान मे 6000 लोगों को धर्म परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया। मसूदी ने लिखा है कि 808–816 ई. तक गुजरात से लेकर दक्षिण मे चोल मण्डलम् तक मुसलमानों की अनेक बस्तियॉ थी।

इसके पश्चात् पश्चिमोत्तर भारत में तुर्को की घुसपैठ शुरू हुई। महमूद गजनवी के आक्रमणों से 11 वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में मुसलमानों की संख्या में अपार वृद्धि हुई। समकालीन स्रोतों से ज्ञात होता है कि अंतर्वेद व गंगा यमुना के दोआवी क्षेत्रों मे तुर्कों की बस्तियॉ जमने लगी। 12वीं शताब्दी के अंत में जब मुहम्मद गौरी ने आक्रमण किया उस समय काबुल से बंगाल तक और दक्षिण में कोंकण से मालावार तक अनेक स्थानों पर मुसलमान बस चुके थे। मुहम्मद गौरी के सेनापति ऐवक ने 1195 ई. में गुजरात पर आक्रमण कर 20,000 लोगों को बंदी बनाया और 1202 ई. में कालिंजर पर आक्रमण कर 30000 लोगों को बंदी बनाया। इन बंदियों को ऐबक ने दास बनाकर मुसलमान बना लिया। मुहम्मद गौरी ने खोखरों का दमन कर 4000 खोखरों को मुसलमान बनाया। किशोरीशरण लाल के अनुसार 1193ई. से 1210 ई. तक मुसलमानों की संख्या अप्रवासियों तथा धर्म परिवर्तन करने वाले लोगों को मिलाकर दो लाख इक्यावन हजार दो सौ थी। लाल के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 190 लाख थी, उसमे 2.1 प्रतिशत मुसलमान थे। उल्लेखनीय है कि इन धर्म परिवर्तित नव–मुसलमानों के अतिरिक्त मुस्लिम संसार के विभिन्न भागों से भारत मे आकर विदेशी मुसलमानों का बसना बराबर जारी रहा।

सल्तनत काल मे जजिया के भय से बहुत से हिन्दू मुसलमान बन गये। दिल्ली सुल्तानों के प्रयास से भी लोग मुसलमान बने। इसी प्रकार सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक प्रलोभनों के कारण भी बहुत से हिन्दू मुसलमान बन गए। बहुत से असहाय दलित हिन्दुओं ने हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता से ऊबकर इस्लाम स्वीकार कर लिया। 14 से 16 वीं शताब्दी का काल राजनैतिक उथल–पुथल का काल था, इस काल में मुसलमानों की संख्या काफी बढ़ी।[2]

डॉ. ताराचन्द, प्रो. हुमायूं कबीर, आबिद हुसैन तथा यूसुफ हुसैन आदि के अनुसार हिन्दू संस्कृति मुस्लिम संस्कृति से बहुत प्रभावित हुई। डॉ. ताराचंद के अनुसार, ''मुसलमानों के संपर्क से हिन्दू धर्म, आचार और कला मे ही परिवर्तन नहीं हुए वरन् हिन्दू संस्कृति का स्वरूप ही बदल गया।'' दूसरी तरफ डॉ. एस.आर.

षर्मा एवं डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार, ''इन दो शक्तिशाली धर्मों और संस्कृतियों के संघर्श ने इस काल की भारतीय संस्कृति पर कोई रचनात्मक प्रभाव नहीं डाला।

वस्तुतः हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियों ने परस्पर एक–दूसरे को काफी प्रभावित किया। दोनों के समन्वय से एक नयी राष्ट्रीय संस्कृति का जन्म हुआ।

जिसके सामाजिक क्षेत्र मे निम्न प्रभाव हुएः–

जाति प्रथा

मुसलमानों के आगमन के बाद अपने धर्म की रक्षा हेतु हिन्दुओं ने जाति नियमों को कठोर बना दिया, आचार–विचार के नये नियम बनाये गये एवं प्राचीन स्मृतियों पर टीकाएँ लिखी गयी। मनुस्मृति पर कल्कू भट्ट ने, याज्ञवल्क्य स्मृति पर स्मृति पर विज्ञानेष्वर ने एवं माधवचार्य ने पाराशर स्मृति पर टीकाएँ लिखी। यह धारणा प्रचलित हो गई कि मुसलमानों के हाथ का छुआ पानी पीने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है। इस व्यवस्था से हिन्दू समाज की गतिषीलता एंव उदारता समाप्त होने लगी। मुसलमानों के आगमन से हिन्दू स्त्रियों की दशा सोचनीय हो गई। मध्यकाल मे मुसलमान सुंदर हिन्दू स्त्रियों का बलपूर्वक अपहरण कर लेते थे। अतः इससे रक्षा हेतु हिन्दू स्त्रियों के बाहर निकलने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। पर्दा प्रथा से स्त्री शिक्षा समाप्त होने लगी। विधवा स्त्रियों को अपने पति के शव के साथ सती होना पड़ता था। राजपूत स्त्रियॉ मुस्लिम आक्रमणकारियों से इज्जत की रक्षा करने हेतु जौहर कर लेती थी।

प्राचीनकाल में स्त्रियों को बड़ा सम्मान प्राप्त था, किन्तु कुरान स्त्रियों की समानता का विरोधी था। अतः मुस्लिम स्त्रियों की दशा खराब हो गई। बहु – विवाह प्रथा से उनकी दशा और बिगड़ गई। अब उच्च हिन्दू परिवारों में भी बहु विवाह प्रचलित होने लगे। मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर अत्याधिक कर लगाये जाने के कारण हिन्दू स्त्रियों को मुसलमानों के घर मे दासी की तरह काम करना पड़ता था।

1. **दास प्रथा को प्रोत्साहन :–** मुसलमान बहुत अधिक संख्या मे दास रखते थे। अतः उनसे प्रभावित होकर हिन्दू राजा भी दास–दासियॉ रखने लगे और उन्हें दहेज मे देने लगे।
2. **वेशभूषा मे परिवर्तन :–** हिन्दू भी मुसलमानों की तरह अचकन, पायजामा, शेरवानी आदि पहनने लगे एवं विवाह के समय सेहरा बांधने लगे। हिन्दू स्त्रियॉ भी मुस्लिम स्त्रियों के समान कसे व चुस्त पायजामे पहनने लगी।
3. **आमोद प्रमोद :–** बाज द्वारा पक्षियों का शिकार, ताश का खेल, षतरंज, जुआ एवं चौगान खेलना एवं हुक्का पीना हिन्दुओं ने मुसलमानों से सीखा।
4. **अन्य प्रभाव :–** हिन्दुओं ने मुस्लिम शिष्टाचार एवं अदब के तौर तरीकों को अपनाया। मुसलमानों के आने से भारतीय समाज दो भागों मे बंट गया। हिन्दू समाज व मुस्लिम समाज।

मुस्लिम समाज पर हिन्दू प्रभाव

1. मुसलमानों द्वारा हिन्दू स्त्रियों से विवाह करने पर हिन्दू रीति–रीवाजों का मुस्लिम समाज मे प्रेवश हुआ एवं दोनों धर्मो मे कट्टरता की कमी आई।
2. हिन्दुओं के समान मुसलमानों मे भी एक पत्नी प्रथा प्रचलित होने लगी एवं विधवा विवाह समाप्त होने लगे। अब मुसलमानों में भी लड़की का जन्म बुरा माना जाने लगा।
3. हिन्दुओं के प्रभाव से मुसलमानों मे भी नस्ल के आधार पर तुर्की, अरबी, ईरानी, तुर्रानी, अफगान, पठान आदि वर्ग तथा धर्म के आधार पर शेख तथा सैयद विकसित हुए। जुलाहा नीलगर बुनकर कुंजड़े आदि परस्पर भेद–भाव करने लगे।
4. मुसलमानों मे हिन्दुओं की नजर लगने से उतारा उतारने की प्रथा अपना ली।[3]

सल्तनत कालीन हिन्दू समाज के बदले स्वरूप

इस काल मे हिन्दू समाज मे अभिजात (कुलीन) श्रेणी के प्रमुख वर्गो का स्वरूप धीरे धीरे काफी कुछ बदला। इस वर्ग मे सामान्यतया हिन्दू शासक, पुरोहित व संपन्न लोग पर हिन्दुओं के ये वर्ग कभी संगठित रूप मे न रहे। और उनसे विविध रूप से विकास होता रहा।

सल्तनतकालीन स्वायत्त एंव अधीनस्थ शासक वर्ग

इस वर्ग में राजा, रानी, जागीरदार व जमींदार आदि को लिया जा सकता है। इनमें से अनेक छोटे मोटे स्वायत्त राज्य के शासक थे। राधेश्याम इनके विषय मे लिखते है ''स्वायत्त राज्य जो कई प्रकार के थे : प्रथम वे हिन्दू स्वायत्त राज्य जो कि तुर्को के उत्तरी भारत पर आक्रमण होने से पूर्व थे, द्वितीय वे स्वायत्त राज्य, जो कि हिन्दू राज्यों के विध्वंस होने के तत्काल बाद स्थापित हुए तथा तृतीय वे राज्य जिनकी स्थापना 14वीं शताब्दी में हुई। कश्मीर से लेकर सिंध, मालवा व गुजरात तक राजस्थान तथा गंगा–जमुना के मैदान, पूर्वी उत्तर प्रदेश बुदेलखंड व बघेलखंड, बिहार, बंगाल व उड़ीस के प्रदेश में कोई भी ऐसा प्रदेश नहीं था, जहॉ कि स्वतंत्र राज्य न थे। स्वायत्त राज्यों के संस्थापक स्थानीय सरदार थे, किंतु 13वीं शताब्दी के उपरांत जिन स्वायत्त राज्यों की स्थापना हुई उनमें से अधिकांश किसी दूसरे प्रदेश से प्रवासित होकर आए थे। स्वायत्त राज्य की स्थापना करने से पूर्व अधिकांष राज्यों के संस्थापकों का कोई विशेष सामाजिक स्तर न था, किन्तु उन राज्यों की स्थापना के बाद एकाएक उनका हिन्दू समाज में उच्च स्थान हो गया। इनमें से अनेक शासकों के पूर्वजों के संबंध में कोई जानकारी ही नहीं मिलती है, किन्तु जो भी ऐतिहासिक सामग्री मिलती है उससे स्वायत्त राज्यों की संख्या का पता चलता है और उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सल्तनत कालीन हिन्दू समाज में स्वायत्त शासकों का महत्वपूर्ण स्थान था। चम्बा का राज्य, नगरकोट का राज्य, मऊ राज्य, कटोच का राज्य, बिलौरा व मदरौवा के राज्यों की स्थापना 11 वीं शताब्दी मे हुई और वे यथावत इस काल मे बने रहे। काष्मीर का पुराना राज्य 1339 ई. तक हिन्दू शासकों के अंतर्गत बना रहा। काश्मीर की घाटी मे जिस किश्तावार के राज्य की स्थापना 900ई. के लगभग हुई थी वह सल्तनत काल मे ज्यों का त्यों बना रहा। जम्मू राज्य की स्थापना 12 वीं शताब्दी में हुई। 12वीं शताब्दी से लेकर 14 वीं शताब्दी के मध्य जबकि तुर्कों के आक्रमणों के कारण उत्तरी भारत के शक्तिशाली राज्य नष्ट हो गए तो शनैः शनैः बड़े राज्यों के स्थान पर छोटे छोटे स्वायत्त राज्य स्थापित हुए। पंजाब मे बांगड़ा के कटोच राजपरिवार के एक सदस्य ने भीभर का राज्य (1400ई) स्थापित किया। कटोच के राजकुमार हरिसिंह ने 15वीं शताब्दी के प्रारंभ मे गुलेर राज्य की स्थापना की। कांगड़ा के कटोच परिवार के सदस्यों ने ही सीवा तथा दहपाल राज्यों की स्थापना की। इस प्रकार 14 वीं 15 वीं शताब्दी मे पंजाब मे अनेक हिन्दू राज्यों की स्थापना हुई।[4]

मुस्लिम समाज के शासक वर्ग

सल्तनत काल में विदेशी मध्य एशियाई मुसलमान देश के शासक थे। 13वीं, 14वीं, 15वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तुर्क तथा 15वीं के उत्तरार्द्ध और 16 वीं शताब्दी में अफगान। तुर्कों के साथ ईरानी, अरब, हब्शी तथा मिस्त्री भी संबंधित थे और शासन सत्ता पूर्ण रूप से इन्ही विदेशियों के हाथों में थी। तुर्क लोग इस विदेशी शासक वर्ग के हितों के कट्टर रक्षक थे तथा वे ही वास्तव मे इनके नेता थे। 13 वीं शताब्दी में शक्ति का एकाधिकार इनके हाथों मे रहा और इन्होने एशिया की मुस्लिम जातियों का नेतृत्व किया। उन्हें नस्ल भेद की नीति में विश्वास था, उन्होने भारतीय मुसलमानों को राजशक्ति मे हिस्सा नहीं दिया और सरकारी नौकरियों से भी उन्हें पूर्ण रूप से वंचित रखा। कुतुबुद्दीन ऐबक

से लेकर कैकुबाद तक सुल्तानों ने सत्ता पर तुर्को का एकाधिकार कायम रखने की नीति का अनुसरण किया, वलवन तो खुले रूप से निम्न कुलोत्पन्न गैर तुर्को से घृणा करता था। तेरहवीं शताब्दी के अंत मे मध्य एशिया के देशों से असंख्य मुस्लिम शरणार्थी भारत में आये जिससे शासक वर्ग की संख्या में अत्याधिक वृद्धि हो गयी। इससे विभिन्न मुस्लिम नस्लों तथा जातियों मे परस्पर सम्मिश्रण भी आरंभ हो गया और अंतरजातीय विवाहों के कारण धीरे–धीरे वे एक दूसरे मे पूर्णतया घुल मिल गये। रक्त की शुद्धता जिस पर उद्वण्ड तुर्को को घमंड था, समाप्त हो गयी और विभिन्न तत्वों के मेल से बनी हुई मुसलमानों की एक नयी जाति बन गयी। खिलजी शासन के आरंभ से ये सामाजिक तत्व इतने शक्तिशाली हो गये कि तुर्को के हाथों से शक्ति का एकाधिकार जाने लगा और सल्तनत के इतिहास मे प्रथम बार भारतीय मुसलमानों को शासन से संबंधित कार्य करने की नीति अपनायी गयी। इस नीति को प्रारंभ करने का श्रेय अलाउद्वीन खिलजी को था जिसने मालिक काफूर नामक योग्य किन्तु कुछ हद तक पतित गुलाम को अपना नायब नियुक्त किया।

ऐसे शासक वर्ग जो विभिन्न तत्वों के समिश्रण से बना था, मिलकर तथा एक उद्देश्य के लिए कार्य करने की आशा नहीं की जा सकती थी। सल्तनत युग के अमीर केवल गैर मुसलमानों के विरूद्ध युद्ध के दौरान मिलकर कार्य करते थे, शान्ति के समय मे निजी महत्वकांक्षाओं, प्रतिद्वन्दिता तथा शत्रुता के कारण उनमें भयंकर फूट रहती थी। और वे निजी स्वार्थ पूर्ति मे लगे रहते थे जिससे राज्य के हितों को अत्याधिक आघात पहुंचता था।

भारतीय मुसलमान

इस युग के प्रारंभ में ऐसे मुसलमानों की संख्या जिन्होने अपना धर्म त्याग कर इस्लाम अंगीकार किया था, बहुत कम रही, किंतु तर्को के राज्य तथा सत्ता के प्रसार के साथ–साथ उसमें भी वृद्धि होती गयी। उसमें अधिकतर नीची जातियों के हिन्दू थे जो अनेक कारणों से अपने पूर्वजों का धर्म छोड़कर मुसलमान हो गये थे। भारतीय मुसलमानों को विजेताओं की श्रेणी में ही नहीं सम्मिलित किया गया था, बल्कि आर्थिक तथा सामाजिक विशेषाधिकारों मे भी उन्हें हिस्सा नहीं मिलता था। संपूर्ण तथाकथित गुलाम युग मे इमादुलमुल्क रावत को छोड़कर किसी भी भारतीय मुसलमान को उच्च पद पर नही नियुक्त किया गया था और इमादुल मुल्क भी इसलिए उच्च पद पर पहुंच सका कि उसने अपने माता–पिता का नाम छिपा रखा था और विदेशी मुसलमानों की संतान होने का बहाना बना दिया था। बलबन ने उसके वंश का पता लगवाने के लिए जांच करवाई और जब उसे यह मालुम हो गया कि उसके माता–पिता भारतीय थे, तो उसके प्रति सुल्तान का स्नेह बहुत कम हो गया। इस सुल्तान के विषय मे कहा जाता है कि वह सरकारी पद पर किसी भारतीय मुसलमान को देखना नहीं सहन कर सकता था। एक बार उसने अपने दरबारियों को इसलिए बहुत बुरा–भला कहा कि उन्होने अमरोहा जिले के क्लर्क के पद के लिए एक भारतीय मुसलमान को चुन लिया था। इल्तुतमिश के विषय में भी कहा जाता है कि उसे भारतीय मुलमानों से बहुत घृण थी। इस युग में इमामउद्दीन रायहन ही केवल एक ऐसा व्यक्ति था जो भारतीय मुसलमान होते हुए भी उच्च पद पर पहुॅच गया, किंतु अंत में उसे भी अहंकारी तुर्कों के शडयंत्र का शिकार बनाना पड़ा। बरनी ने रायहन के पराभव का जो कारण दिया है, उसका गंभीर महत्व है' ''राज्य के अमीर तथा नौकर सब शुद्ध तुर्की रक्त के थे और उच्च वंश के ताजिक थे। किंतु इमामउद्दीन एक हिजड़ा अैर नपुसंक था, इसके अतिरिक्त वह हिंदुस्तान की जातियों से उत्पन्न हुआ था। फिर भी वह इन सब अमीरों पर शासन करता था। वे इस अवस्था से तंग आ गये थे और अधिक समय तक इसे सहन नहीं कर सकते थे।'' किंतु चौदहवीं शताब्दी मे स्थिति बदल गयी। मंगोलों की सफलताओं के कारण मध्य एशिया मे तुर्को का भारत आना बंद हो गया, इसलिए खिलजी लोगों के लिए भारतीय मुसलमानों की सहायता के बिना शासको का काम चलाना ही असंभव हो गया। यही कारण था कि अलाउद्दीन खिलजी ने कुछ महत्वपूर्ण पदों पर भारतीय मुसलमानों को नियुक्त करने की नीति प्रारंभ कर दी । किंतु फीरोज तुगलक के समय तक किसी भारतीय को ऐसे पद पर नियुक्त नहीं किया गया जिससे वह राज्य नीति निर्धारित कर सकता। फीरोज ने पहली बार ख्वाजाजहॉ को जो ब्राम्हण से मुसलमान हुआ था, अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। मुहम्मद बिन तुगलक और फीरोज तथा प्रारंभ से लेकर अंत तक सल्तनत के सभी शासकों को विदेशी अधिक पसंद थे। किंतु चौदहवी शताब्दी के मध्य से भारतीय मुसलमानों को राज्य की नौकरियों मे कुछ भाग मिलने लगा, यद्यपि वह बहुत ही सीमित था।

दीर्घकाल तक भारतीय मुसलमान की स्थिति बहुत ही दयनीय रही। देष के शासन मे उसका हाथ नहीं था और न शासक वर्ग मे ही उसका स्थान था। अपने बहुसंख्यक हिन्दू देशवासियों से भी धन, सामाजिक स्थिति तथा स्वाभिमान की दृष्टि से वह कहीं अधिक नीचा था। उसको केवल यही संतोश था कि मेरा भी धर्म वही है जो शासको का और शुक्रवार के दिन मै भी उन्ही के साथ एकत्र होकर मस्जिद में नमाज पढ़ सकता हूँ। उसकी निरंतर यही इच्छा रहती थी कि विदेशी सहधर्मियों के साथ मेरा समता का स्थान हो और उनकी शक्ति तथा धन में मुझे भी हिस्सा मिले। अपने जीवन की महत्वकांक्षाओं को पूरा करने के लिए उसे अपने पूर्वजों का रहन–सहन तथा जीवन–प्रणाली त्यागकर विदेशी ढंग तक अपनाना पड़ता था। यह भाग्य की ही कुटिल गति थी कि इन कारणों से उसका अपने जीवित अथवा मृत बंधु बांधवों से पूर्णतया संबंध विच्छेद हो गया था और अपनी जन्मभूमि मे ही वह परदेशी बन गया था।[5]

सर्वसाधारण अथवा भारतीय मुसलमान

जो हिन्दू मुसलमान बने थे, उनकी स्थिति मुस्लिम समाज में काफी दयनीय थी तथा उनके साथ भेद–भाव किया जाता था। गुलाम वंश के सुल्तान जो भारतीय मुसलमानों से घृणा करते थे। एक–दो भारतीय मुसलमानों को छोड़कर कोई भी भारतीय मुसलमान उच्च पद पर नहीं पहुंच पाया था।

दास

मुस्लिम समाज में एक अलग वर्ग था जिसे दास वर्ग के नाम से जाना जाता था। प्रत्येक सुल्तान एवं अमीर अनेक गुलाम रखते थे। दास सरकारी दफ्तरों में भी कार्य करते थे। इन दासों पर उनके मालिको का पूर्ण अधिकार होता था। इन दासों का स्थान काफी नीचा था, किंतु वे अपनी योग्यता से उन्नति करते थे। कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, बलबन इसके उदाहरण है। शनैःशनैः दास वर्ग शक्तिशाली हो गया था प्रशासन मे हस्तक्षेप करने लगा। अतः बलबन ने इन्हे शक्तिहीन बना दिया। फीरोज तुगलक के समय मे दासों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी और वे कई उच्च पदों पर पहुंच गये थे। मुस्लिम समाज के निम्न वर्ग मे कारीगर एवं व्यापारी थे, जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी।[6]

मुस्लिम समाज दो कोटियों मे विभक्त था– तलवार के धनी तथा लेखनी के धनी। पहली कोटि मे सैनिक लोग सम्मिलत थे और उनमे से अधिकतर विदेषियों की संतान थे। वे राजधानी तथा प्रांतों के सैनिक संगठनों मे पदाधिकारियों अथवा सिपाहियों के पदों पर काम करते थे। वे खान, मलिक, अमीर, सिपहसालार, सरेखेल आदि श्रेणियों मे विभक्त हुए। इस श्रेणी विभाजन मे खान का सबसे ऊंचा और सरेखल का सबसे नीचा स्थान था। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि यह संगठन केवल कागज तक ही सीमित था। व्यवहार मे वह प्रारंभ से छिन्न–भिन्न होने लगा था और 14वीं तथा 15वीं शताब्दियों तक उसका महत्व बहुत कुछ घट गया। लेखनी के धनी लोगों मे अधिकतर गैर–तुर्की विदेशी अथवा उनके वंशज थे। क्लर्की, अध्यापन तथा धार्मिक सेवाऍ

उन्ही के हाथों मे थी। इनमे सबसे अधिक महत्वशाली वर्ग धर्माधिकारियों का था जो उलेमा कहलाते थे। वे मौलवी, अध्यापक और काजी हुआ करते थे। सरकार तथा सामान्य मुस्लिम जनता पर उनका काफी प्रभाव था।

इस संपूर्ण युग मे मुसलमान अधिकतर नगरों मे ही बसते थे, गॉवों मे उनकी संख्या बहुत कम थी। गुलामों को भी हम इसी कोटि मे सम्मिलत कर सकते है और इस युग मे उनकी संख्या भी बहुत ही बड़ी थी। प्रत्येक शासक, सामंत तथा धनी व्यक्ति के यहॉ चाहे वह नौकरी करता हो और चाहे व्यवसाय अनेक गुलाम होते थे उनसे घरेलू कार्य करवाये जाते थे और बहुत से राजकीय कारखानों मे काम करते थे। मुसलमानों में भिखारियों की बड़ी संख्या रही होगी क्योकि दरिद्रता को धार्मिकता का आधार माना जाता था।

उलेमा

लेखनी से जीवकोपार्जन करने वाले मुस्लिम वर्गों मे सबसे अधिक प्रभावशाली लोग धर्माधिकारी लोग थे जो उलेमा कहलाते थे। वे मुसलमानों के पादरी थे। उनका समुदाय वंशानुगत नहीं था और न उसमे किसी नस्ल अथवा देश– विदेश के ही लोग सम्मिलित थे। किंतु उनमे ऐसा मुसलमान शायद ही कोई रहा हो जिसके माता पिता भारतीय थे क्योकि इस युग मे भारतीय मुसलमान धर्माधिकारियों के उच्च पद पर नहीं पहुँच सकते थे। इस सबके बावजूद उलेमा का एक सुसंगठित समाज था, वे अपने महत्व को भलीभांति समझते थे और अपने विशेषाधिकारों कें संबंध मे बहुत सजग थे। देश में जहॉ कहीं भी मुसलमानों की कुछ संख्या होती, वहॉ वे पाये जाते थे और न्याय धर्म तथा शिक्षा संबंधी नौकरियों पर उनका एकाधिकार था। उनमें से कुछ निजी तथा राजकीय शिक्षा संस्थाओं में अध्यापकों का कार्य करते थे और कुछ ऐसे थे जो अपनी शक्ति तथा समय धर्म प्रचार मे व्यय किया करते थे। इस युग के समस्त इतिहास लेखक ही नहीं बल्कि सभी साहित्यिक व्यक्ति इसी समुदाय में सम्मिलत थे। सभी उलेमा मुस्लिम धर्मशास्त्रों में पारंगत पाये जाते थे। उनमें से प्रत्येक को विवादग्रस्त धार्मिक विषयों पर फतवा देने का अधिकार था।

तुर्की सल्तनत की स्थापना के समय से ही उलेमा का वर्ग अत्यधिक प्रभावशाली था और सुल्तान तथा उसके महत्वपूर्ण कानूनी विशयों पर ही नहीं, बल्कि राज्य की नीति के संबंध में भी उनकी सलाह ली जाती थी। इसलिए धीरे–धीरे उनकी स्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण हो गई। वे समझने लगे थे कि धार्मिक अथवा धर्मनिरपेक्ष सभी विषयों पर पूछे जाने का हमारा अधिकार है। दिल्ली के प्रारंभिक सुल्तान तो लगभग पूर्णतया उन्हीं के प्रभाव मे थे। अलाउद्दीन पहला सुल्तान था जिसने स्वतंत्र नीति अपनायी और उनकी राय की उपेक्षा की। उसने खुले रूप से घोषणा की कि मै इस बात की चिंता नहीं करता कि मेरा आचरण इस्लामी नियमों के अनुकूल है अथवा नहीं, मै राज्य के हितों अथवा अवसर–विशेष के लिए जो उचित समझता हूं वही करता हूं। किंतु उसके उत्तराधिकारी उतने कठोर तत्व के नहीं बने थे, जितना कि वह था। इसलिए उन्होने सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उलेमा की राय लेने की पुरानी नीति पुनः अपना ली। मुहम्मद तुगलक ने अपने शासन के प्रारंभिक वर्षो मे इस वर्ग के प्रभाव को कम करने का प्रयत्न किया किंतु उलेमा ने उसे इतना सताया और उसकी इतनी निंदा कि उसे भी पराजय स्वीकार करनी पड़ी और अपने अंतिम दिनों में प्रायश्चित करना पड़ा। उसका उत्तराधिकरी फीरोज तुगलक पूर्णरूप से उलेमा की इच्छाओं का दास और उनके परामर्ष के बिना स्वतंत्रापूर्वक कुछ भी नहीं कर सकता था। सुल्तानों के मस्तिश्क पर उलेमा का पूर्ण प्रभुत्व था, इसलिए ऐसा शक्तिशाली कोई सुल्तान नहीं हुआ जो उनकी सत्ता को चुनौती दे सकता।[7]

समकालीन समाज पर इस्लाम का काफी कुछ प्रभाव ही प्रत्यक्ष रूप में तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप में पड़ा। ''इस्लाम उनके लिए भ्रातृत्व समानता व एकता का संदेष लेकर आया कि सभी मानव समान है और उनमे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं, धर्म व समाज में सभी बराबर हैं। इससे आकर्शित होकर अधिकार विहीन निम्न वर्ग के हजारों लाखों हिन्दुओं ने अपना समाज छोड़ दिया और इन्होने इस्लाम धर्म ग्रहण कर, भारतीय मुसलमान के रूप में नया जीवन प्रारंभ किया। कुछ भारतीय मुसलमानों को उन्नति करते देखकर अन्य इस्लाम को स्वीकार करना श्रेयस्कर समझा। परंतु शीघ्र ही भक्ति आंदोलन ने धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया को रोक लिया।[8]

इस देश में तुर्की शासन साढ़े तीन सौ वर्षो से भी कुछ अधिक चला। इस बीच मे विजय तथा दमन की प्रक्रिया भी जारी रही, इस युग मे लाखो हिन्दू मारे गये। लाखों का युद्धों में संहार हुआ और लाखों स्त्रियों तथा बच्चे मुसलमान बनाकर दासों के रूप मे बेच दिये गयें। उदाहरण के लिए, तैमूर ने मुहम्मद तुगलक से युद्ध करने के पूर्व एक दिन में ही एक लाख हिन्दू बंदियों को कत्ल करवा दिया। हमारे देष के इतिहास के किसी भी युग में प्रारंभिक अथवा परवर्ती ब्रिटिश युग में भी मानव जीवन का इतना नृशंसतापूर्ण नाश नहीं किया गया जितना कि तुर्क अफगान शासन के इन 350 वर्षो में। उच्च तथा मध्यम श्रेणियों के हिन्दुओं को सैनिक तथा असैनिक सरकारी नौकरियों से वंचित कर दिया गया। था। इससे समाज मे एक क्रांति हो गयी और अगणित परिवारों को कश्ट भोगने पड़े। उन्हें शासकों, मन्त्रियों, सूबेदारों तथा सेनापतियों के महत्वपूर्ण पदों से हीं वंचित नहीं किया गया। बल्कि उनके साथ घृणापूर्ण व्यावहार भी किया गया। तुर्की सुल्तान तथा उनके प्रमुख अनुयायी समृद्ध हिन्दू परिवारों में अपने लिये पत्नियॉ प्राप्त करने के इच्छुक रहते थे और इस हेतु उच्च सामंतो को अपनी लड़कियॉ देने पर विवश कर देते थे। मुस्लिम कानून के अनुसार इन हिन्दू लड़कियों को पहले अपने धर्म से वंचित करके मुसलमान बना लिया जाता और तब उनके साथ विवाह किया जाता था। इन सबके कारण सम्मान प्रिय हिन्दुओं को निरंतर अपमानित होना पड़ता था और इसलिए अपनी पराजय तथा पतन के कारण नहीं बल्कि वास्तव में वे नैतिकता और रहन–सहन की दृश्टि से हम से बहुत नीचे है। विजेताओं ने उन्हे जो राजनीतिक अथवा आर्थिक कष्ट पहुंचाये उनसे उन्हें इतना दुख और वेदना नहीं हुई जितनी कि असम्मानजनक व्यवहार, धार्मिक अत्याचारों और परिवारिक सम्मान पर आघात के कारण हुई।

हिन्दू समाज जाति व्यवस्था पर आधारित था। तुर्क शासन ने हिन्दुओं को अपने जाति संबंधी नियम पहले से भी अधिक जटिल बनाने पर बाध्य किया। तुर्को को सुंदर हिन्दू लड़कियों को अपनी पत्नियॉ बनाने का शौक था, इस कारण हिन्दुओं मे बाल विवाह का सामान्य नियम बन गया। उच्च तथा मध्य वर्गो मे पर्दा प्रथा भी प्रचलित हो गयी। उस युग मे नीची जातियों को छोड़कर अन्य लोगों मे विधवा विवाह का विचार ही जाता रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि समृद्ध परिवारों को छोड़कर साधारण हिन्दुओं में स्त्री शिक्षा का पूर्ण अभाव था, किंतु लड़कों को प्रारंभिक शिक्षा का सर्वत्र प्रचार था। प्रत्येक गॉव मे एक पाठशाला होती थी जहॉ पढ़ने लिखने तथा गणित की शिक्षा दी जाती थी। तुर्की सरकार के लिए संपूर्ण हिन्दू जनता का निशस्त्रीकरण करना असंभव था इसलिए हिन्दू लोग अपने गांवों की रक्षा का सफलतापूर्वक प्रबंध कर लेते थे। हिन्दुओं का अपने धर्म मे विशेष अनुराग था। उनमें से एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे, किंतु बहुसंख्यक जनता मूर्तिपूजा करती थी।

हिन्दुओं की दषा

सल्तनत काल में भारत मे 95 प्रतिशत हिन्दू थे, जिनकी दशा अत्यंत सोचनीय थी। उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे तथा उन्हें निम्न दृष्टि से देखा जाता था। मुसलमानों ने लाखों हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया, लाखों

को ही दास बना लिया तथा बलपूर्वक मुसलमान बनाया। हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त नहीं किया था। ऊंचे घराने के हिन्दुओं को अपनी पुत्रियों का विवाह विवश होकर मुसलमानों के साथ करना पड़ता था। बरनी हिन्दुओं की दशा का वर्णन करते हुए लिखता है ''वे हिन्दू खिराजगुजार कहलाते है और जब तहसीलदार उनसे चांदी मांगता है, तब वे बिना उर्ज किये बड़ी नम्रता तथा आदर के साथ सोना भेंट करते हैं। जब कर वसूल करने वाले अधिकारी हिन्दुओं के मुंह मे थूकना चाहते तो बिना किसी हिचकिचाहट के अपना मुंह खोल दिया करते थे। फीरोज बड़ा धर्मान्ध सुल्तान था। उसने ब्राम्हण को सिर्फ इसलिए जलवा दिया क्योकि वह मूर्तिपूजा करता था तथा उसने एक मुसलमान औरत को हिन्दू बना दिया था।

डॉ. मेंहदी हुसैन तथा डॉ. आई.एच. कुरेशी सल्तनत काल में हिन्दुओं की दशा अच्छी बताते हैं, जो असत्य है। राजस्व और वित्त विभाग मे निम्न पदों पर हिंदुओं की प्रधानता थी। क्योकि कर वसूली के लिए हिन्दुओं का सहयोग आवश्यक था और इन पदों के लिए मुसलमान नहीं थे। उन्हें कभी ऊंचे पदों पर नियुक्ति नहीं किया गया। प्रो. एन.पी.राय के अनुसार, ''हिन्दुओं को नागरिकता के अधिकार से वंचित रखा जाता था और उन्हे काफिर समझा जाता था। उनको संबोधन ''हैदा कुल्लाह'' से किया जाता था जिसका अर्थ था कि अल्लाह उन हिन्दुओं का मार्ग प्रदर्शन करे।[9]

सल्तनतकालीन सामाजिक जीवन

सल्तनत कालीन समाज में हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे के संपर्क में आए। इस युग के दोनो संप्रदाय के लोगों की बहुत सी पुरानी प्रथाएँ जारी रही और इनमें से बहुत सी बातें एक दूसरे से अपनाई। फिर भी इस युग में पूर्ण सामाजिक समन्वय नहीं हुआ। समय के साथ साथ दोनों समुदायों में सांस्कृतिक आदान प्रदान की गति निरंतर तीव्र होती गई और कुछ ही वर्शो के बाद भारतीय सामान्य वर्ग के जीवन मे एक रूपकता दिखाई देने लगी।

शासक वर्ग

सल्तनत काल मे तेरहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के सभी षासक तुर्क थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत से लेकर 1526 ई. तक सत्ता अफगानों के हाथ में रही। तुर्को के साथ–साथ कुछ विदेशी जिनमे ईरानी अरबी और हब्सी आदि प्रमुख हैं शासक वर्ग के रूप में भी प्रभावशाली थे। प्रारंभ मे सत्ता पर तुर्को का एकाधिकार रहा। खिलजी शासन काल में भारतीय मुसलमानों को शासक वर्ग में शामिल किया गया। सुल्तान, हिन्दू राजा सल्तनत के प्रमुख अमीर एवं सामंत इस वर्ग मे शामिल थे। उनका जीवन स्तर तत्कालीन विश्व मे उच्चतम समझा जाता था। भारतीय शासक वर्ग का रहन–सहन उच्च स्तर था और इनकी नकल करने का प्रयत्न अनेक देशों का शासक वर्ग करता था। बलबन का दरबार इतना शानदार था कि प्रत्येक आगंतुक के हृदय मे उनके प्रति आदर के भाव भर जाते थे। अलाउद्दीन खिलजी और उसके उत्तराधिकारियों ने भी इसी परंपरा को जारी रखा प्रसिद्ध यात्री इब्नबतूता ने मुहम्मद बिन तुगलक के महल की शान का विस्तृत वर्णन किया है। वह उल्लेख करता है कि ''सुल्तान के पास पहुंचने के लिए हर व्यक्ति को तीन बड़े द्वारों से गुजरना पड़ता है जिन पर सैनिकों का पहरा होता था। दस हजार खंभो वाले दरबार में पहुंचना था। यह एक बहुत बड़ा दीवानखाना था। जिसमे लकड़ी के खंभे लगे हुए थे। इसकी सजावट बहुत मंहगी–मंहगी वस्तुओ और आसनों से की गई थी। ''कई बार सुल्तान अनेक पोशाके बहुत बड़ी मात्रा मे नकदी सोना–चोंदी इत्यादि दान करते थे। सुल्तान अपने दरबारियों को दो मान पोशाकें एक सरदी और एक गरमी की दिया करता था, एक अनुमान के अनुसार वह दो लाख पोशाकें प्रतिवर्ष देता था। प्रायः प्रत्येक सुल्तान अपने जन्म दिन राज्यारोहण की वर्षगांठ और नौ रोज (फारसी नव वर्श) जैसे मंगलमय त्यौहारों पर अनेकानेक उपहार दरबारियों को दिए जाते थे। शासक वर्ग की जरूरतों को पूरा करने के लिए तथा दरबार स्वयं शान शौकत मे परिवार की रक्षा के लिए जिन विलासिता संबंधी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती थी उन्हें षाही कारखानों मे बनाया जाता था। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में एक वस्त्र निर्माणशाला में चार सौ रेशमी कपड़े बुनने वाले जुलाहे काम मे लगे रहते थे। फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल में शाही कारखानों का बहुत विस्तार हुआ। फिरोजशाह तुगलक ने अपने अधिकारियों को यह आदेश दे रखा था कि किसी भी दुर्लभ अथवा बढ़िया चीज को किसी भी कीमत पर खरीद लिया जाए। शाही प्रयोग के लिए अधिकांश वस्तुएं सोने–चांदी के काम आने वाली रत्नों से जुड़ी हुई और कढ़ाईदार होती थीं। प्रत्येक सुल्तान के हरम मे अनेक रानियां अनेक दास, दासियां और अनेक रिश्तेदार महिलाएं रहती थी। हर एक के रहने के लिए अलग आवास का प्रबंध किया जाता था। दास और दासियों का प्रमुख कार्य शासक वर्ग के सुख सुविधाओं का ख्याल रखना होता था महल और हरम के कमरों को प्रकाशित करने के लिए मोमबत्तियां और मशालों इत्यादि का प्रयोग किया जाता था।

निष्कर्ष

मध्य युग मे हमारा देश अतुल धन संपत्ति के लिए विख्यात था। हमारे अपार धन की कहानियों से लालायित होकर ही महमूद गजनवी तथा उसके लुटेरे अनुयायियों के झुण्डों ने हमारे राज्यों की वैभवशाली राजधानी पर आक्रमण किया और मंदिरों को लूटा। मुहम्मद बिन कासिम को सिंध और महमूद गजनवी को हिंदुस्तान मे सोना, चांदी, अनेक प्रकार के बहुमूल्चय रत्नों सिक्कों तथा अन्य प्रकार के सामान के रूप में जो करोड़ों रूपये का माल लूट में मिला उसका वर्णन तत्कालीन लेखकों ने किया है, उससे सरलता से विश्वास हो जाता है कि देश के वैभव की कहानियॉ केवल कल्पना की उपज नहीं थी बल्कि उनका आधार वास्तविकता थी।

हमारे देश की संपत्ति का मुख्य साधन कृषि थी। अधिकांश भागों मे भूमि का प्राकृतिक उर्वरापन पर्याप्त वर्षा अत्यंत प्राचीनकाल से चली आ रही है। सिंचाई की सुविधाएं जिन्हं फीरोज तुगलक ने और अधिक सुगम बना दिया था तथा किसानों की परिश्रमशीलता इन सब कारणों से देश मे इतना अन्न उत्पन्न होता था कि उससे समस्त जनता की आवश्यकताएॅ ही नहीं पूरी हो जाती थी बल्कि बाहर के देशों को भी उसका निर्यात होता था। रूई गन्न, तिलहन, अफीम आदि उत्तम फसले बड़े पैमाने पर उत्पन्न की जाती थी। देष के विभिन्न भागों मे विभिन्न प्रकार के फल उत्पन्न होते थे। फीरोज तुगलक के राजस्व का एक बड़ा भाग बागों से आता था। यद्यपि अधिकांश जनता का जीवकोपार्जन कृषि था किंतु नगरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों मे भी अनेक उद्योग धंधें चलते थे। तुर्कों के आगमन से शताब्दियों पूर्व औद्योगिक दृष्टि से हमारा देश सुसंगठित था।

भारतीय तथा विदेशी सभी तत्कालीन लेखकों के ग्रंथों से इस युग की सामान्य समृद्धि प्रमाणित होती है। विदेशी पर्यटकों मे मार्कोपोलों जिसने 1228 तथा 1293 ई. मे दक्षिणी भारत की यात्रा की, इब्नबतूता जिसने 1334ई. तथा 1342ई. के बीच देश के अनेक भागों के भ्रमण किया और चीन यात्री माहुऑ जिसने 1406 ई. मे बंगाल का पर्यटन किया विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योकि इन सबने देश का जो वर्णन छोड़ा है उससे सिद्ध होता है कि आर्थिक तथा औद्योगिक दृष्टि से भारत समृद्ध था और यहां जीवन की आवश्यकता की सभी वस्तुएं प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध थी।[10]

भारत मे इस्लाम के आगमन के साथ ही अनेक सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलनों का प्रादुर्भाव हुआ। इतिहास गवाह है कि

भारत के विभिन्न प्रकार की जातियों तथा संस्कृतियों की पारस्परिक परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा सामंजस्य तथा साहचर्य स्थापना मे आगे रहा है। भारत भूमि एवं संस्कृति मे आत्मसात करने की एक अद्भुत क्षमता है। परंतु इस काल मे मुसलमानों का आगमन, उसके आत्मसात करने की इस प्रक्रिया के लिए चुनौती बन गया।

हिन्दुओं के सांस्कृतिक कार्य हिन्दू राजाओं के दरबारों तथा हमारे मुख्य विद्या केन्द्रों और शीर्ष तीर्थ स्थानों तक की सीमित थे, जबकि हिन्दुओं को राज्याश्रम उपलब्ध नही था। वह स्वाभाविक ही था कि वे कोई ऐसी महान तथा अमर साहित्यिक कृति उत्पन्न न कर सके जिसकी तुलना कालिदास, भवभूति, बाण, तुलसी और सूर की रचनाओं से की जा सकती है। संस्कृति तथा कला के क्षेत्र मे हिन्दुओं ने तुर्को की श्रेष्ठता कभी नहीं स्वीकार की। परिणाम स्वरूप प्रचुर मात्रा मे धार्मिक तथा दार्शनिक साहित्य की रचना हुई यद्यपि वह बहुत उच्चकोटि की नहीं थी। रामनुज ने ब्रम्हसूत्रों पर टीकाएँ लिखी। पार्थसारथी ने कई मीमांसा पर अनेक ग्रंथ रचे । शास्त्रदीपक इनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। 12वीं शताब्दी मे जयदेव ने प्रसिद्ध गीतगोविन्द की रचना की। हरकेलि नाटक, ललित विग्रहराज नाटक, प्रसन्न राघव (जयदेव द्वारा रचित 1200ई. के लगभग, हम्मीर मद मर्दन जयसिंह सूरी द्वारा रचित 1219–1229ई. प्रद्युम्नाभ्युदय रविवर्मन प्रतापरूद्र कल्याण विद्यानाथ, पार्वती परिणय वामनभट्ट बाण गोस्वामी आदि अनेक सुंदर नाटक इसी युग में लिखे गये।

विदेशी तुर्को तथा अन्य मध्य एषियाई जातियों और हिन्दुओं के पारस्परिक संपर्क के फलस्वरूप इस युग मे एक नयी भाशा का जन्म हुआ। प्रारंभ मे वह जबाने–हिन्दवी कहलाती थी आगे चलकर वह उर्दू के नाम से विख्यात हुई, जो शताब्दियों से मेरठ तथा दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेशों मे बोली जाती थी। उसके व्याकरण का ढांचा भारतीय ही था किंतु धीरे धीरे उसमे फारसी तथा अरबी के शब्दों का प्राधान्य होने लगा। कहा जाता है कि अमीर खुसरो पहले मुस्लिम लेखक थे जिन्होने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए इस भाषा का प्रयोग किया। किंतु इस युग के तुर्की शासकों ने उसको प्रोत्साहन नहीं दिया।

कुछ वर्षो पूर्व एक आधुनिक लेखक ने दिल्ली सल्तनत का पक्ष लेकर यह दावा किया है कि यह एक संस्कृति संपन्न राज्य था। इसके विपरीत अन्य इतिहासकारों का मत है कि 1206ई. से 1526ई. तक का युग सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से पूर्णतया निष्फल था। दोनों ही मत अतिवादी विचारों के प्रतीक है और सत्य से दूर हैं। जो राज्य सांप्रदायिक था, भाषा संस्कृति और यहॉ तक कि प्रेरणा भी विदेशी थी और जिसने इस देश की 95 प्रतिशत जनता की भाषा संस्कृति और आदर्शो की उपेक्षा तथा दमन किया उसे संस्कृति संपन्न राज्य कहना ऐसा दावा है जिस पर सरलता से विश्वास नहीं किया जा सकता। संस्कृति तथा धार्मिक कट्टरता का समागम नहीं हो सकता। साथ ही यह सोचना भी अन्यायपूर्ण होगा कि दिल्ली सुल्तान अर्द्धसभ्य सैनिक थे और साहित्य काव्य तथा कलाओं मे उन्हें रूचि ही नहीं थी। तुर्क अफगान शासक यद्यपि मूलतः सैनिक लोग थे इस्लामी विद्याओं और कलाओं को आश्रय तथा प्रोत्साहन दिया। कुतुबुद्दीन से लेकर सिकंदर लोदी तक प्रत्येक सुल्तान के दरबार मे फारसी लेखकों कवियों दार्शनिकों, नैयायिकों, शास्त्रज्ञों तथा विधिविज्ञों का जमाव रहता था। कुछ सुल्तानों के दरबार मे इतिहासकार भी रहते थे। इस कोटि मे ताजुल मासिर के लेखक हसन निजामी 'तबकाते नासिरी' के रचयिता मिनहाजुद्दीन सिराज तारीखे फीरोजषाही तथा फतवाए–जहॉदारी के लेखक जियाउद्दीन बरनी, तारीखे फीरोजषाही के लेखक शम्से सिराज अफीफ, तारीखें मुबारकशाही (दक्खिन) के रचयिता यहिया बिन अहमद सरहिन्दी तथा फुतूह उस सलातीन के लेखक इसामी के नाम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ

1. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल – दिल्ली सल्तनत 711 से 1526 पृ. 7।
2. डॉ. राधेशरण – मध्यकालीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास पेज 2–9।
3. नगौरी, एस.एल. – दिल्ली सल्तनत पेज 194–95।
4. डॉ. राधेशरण – मध्यकालीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास पेज 16–17।
5. श्रीवास्तव, आर्शीवादीलाल – दिल्ली सल्तनत 711 से 1526 पेज 298–300।
6. नागोरी, एस.एल. – दिल्ली सल्तनत पेज 184।
7. श्रीवास्तव आर्शीर्वादीलाल – दिल्ली सल्तनत 711 से 1526 पेज 300–301।
8. डॉ. राधेशरण – मध्यकालीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास पेज 302।
9. नागोरी, एस.एल. – दिल्ली सल्तनत पेज 184–185।
10. श्रीवास्तव आर्शीर्वादीलाल – दिल्ली सल्तनत पेज 304–307।